Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2016 = 6.177, www.srjis.com
UGC Approved Sr. No.49366, NOV-DEC 2017, VOL- 4/37

केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रगतिशील तत्व

सुमन बंसल[1], Ph. D. & अपर्णा शर्मा[2], Ph. D.

[1]हिन्दी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

[2]पूर्व शोधार्थी, आगरा कॉलेज, आगरा, (डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय,आगरा।)

ईमेलः chaudharyarpana96@gmail.com

Abstract

हिन्दी साहित्य के विकास में केदारनाथ सिंह महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। केदारनाथ सिंह जी की कवितायें कवि के प्रगतिशील बोध का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कवि केदारनाथ सिंह जी की कवितायें समय के साथ संवाद करती हुई प्रतीत होती हैं। यही वजह है कि उनकी कविताओं में एक तरह की प्रगतिशीलता दिखाई देती है। ऐसी प्रगतिशीलता जो कहीं गहरे बैठकर पाठक को बेचैन कर देती है 'जमीन पक रही है' काव्य संग्रह कवि के विकसित बोध को सामने लाती है। यह काव्य संग्रह कविता की जमीन को पकने एवं जनवादी इतिहास चेतना के थकने का भी प्रतीक है। एक महत्वपूर्ण कवि अपने समय में मनुष्य और सत्ता के सम्बन्धों में हो रहे परिवर्तन को अपने शब्दों द्वारा रेखांकित करता है। यह दरअसल समाज के नव्यतम शक्ति–रचनाओं को अनावृत करने की कोशिश है, जिससे वक्त और इंसान दोनों की जेहनीयत का पता चलता है। केदार जी की कविता एक साथ जिंदगी में उपलब्ध संसाधनों की बर्बादी और लोगों के चरित्र में पैदा हो गए कनुष और अपारदर्शिता की विडम्बना को क्रान्तिकारी स्थर द्वारा प्रत्यदन करते हैं।

Keywords: *प्रगतिशील बोध, इतिहास चेतना, जनवादी, सामाजिक चेतना*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

विश्लेषण एवं निष्कर्ष : केदारनाथ सिंह जी समकालीन हिंदी कविता के ही नहीं बल्कि भारतीय प्रगतिशील कविता के भी प्रमुख कवि हैं। आजादी के बाद की जो प्रगतिशील कविता हमें दिखाई देती है उसकी समझ एवं अनुशीलन के लिये केदार जी की कविता का पाठ अनिवार्यता की सीमा तक जरूरी है। बिना उससे गुजरे कविता की विकास यात्रा को समझा नहीं जा सकता है। उनकी प्रगतिशीलता ने एक अपूर्व व्यापकता हासिल की है। आज वे हिंदी में ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में भी सर्वाधिक पढ़े जाने वाले कवियों में से एक हैं। उनका एक वृहत्तर पाठक समुदाय है जिसके वे निर्विवाद 'हीरो' हैं।

हिन्दी साहित्य के विकास में केदारनाथ सिंह महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। केदारनाथ सिंह जी की कवितायें कवि के प्रगतिशील बोध का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कवि

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

केदारनाथ सिंह जी की कवितायें समय के साथ संवाद करती हुई प्रतीत होती हैं। यही वजह है कि उनकी कविताओं में एक तरह की प्रगतिशीलता दिखाई देती है। ऐसी प्रगतिशीलता जो कहीं गहरे बैठकर पाठक को बेचैन कर देती है 'जमीन पक रही है' काव्य संग्रह कवि के विकसित बोध को सामने लाती है। यह काव्य संग्रह कविता की जमीन को पकने एवं जनवादी इतिहास चेतना के थकने का भी प्रतीक है।

केदारनाथ सिंह के काव्य में निहित प्रगतिशील तत्वों का विवेचन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है–

(क) सामाजिक चेतना

प्रगतिशील काव्यधारा प्रारंभ से एक प्रकार से सामाजिक चेतना से अनुप्राणीत रही है।कवि केदारनाथ सिंह जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के शोषितवर्ग में सामाजिक चेतना जगाने का प्रयास किया है।

केदारनाथ जी ने अपनी कविता को एक वृहत्तर आयाम दिया है और कविता को सामाजिक धरातल पर वरक्स खड़ा किया है, उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों में सामाजिक सवालों से जूझने की ताकत भरी है। 'रोटी' कविता का उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करता है–

वह आगे बढ़ रही है। धीरे–धीरे। झपट्टा मारने को तैयार।
वह आगे बढ़ रही है। उसके गमहिट पहुंच रही है आदमी की नींद।
और विचारों तक। मुझे विश्वास है। आप उसका सामना कर रहे हैं।

यहां इस कविता के माध्यम से केदार जी लोगों में यह सामाजिक चेतना जगाने का कार्य करना चाहते हैं कि जिस प्रकार रोटी धीरे–धीरे आगे बढ़ रही है उसी प्रकार मनुष्य को हर मुसीबत का सामना करते हुये आगे बढ़ना चाहिये और अपनी प्राथमिकताओं को पूरा करना चाहिये।

केदारनाथ सिंह जी हमारी सामाजिक व्यवस्था पर भी दृष्टि डालते हैं कि हमारे समाज में वर्ण व्यवस्था की जड़ें इस प्रकार घुस गई हैं कि 'जगन्नाथ' जैसे असभ्य मामूलीजनों के नामों के भीतर एक ऐसी समाज व्यवस्था झांकती दिखाई देगी जिसका सामना करने के लिये समाज के लोगों को अतिरिक्त साहस करना होगा। 1984 में लिखी गई इस कविता में कवि को जगन्नाथ की मौत हतप्रभ कर देती है। जिस सामाजिक व्यवस्था में हम जी रहे हैं वहां प्रधानमंत्री के इलाज के लिए तो अमेरिकी ड०क्टर उपलब्ध हैं और समाज के

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

मामूलीजन जगन्नाथ जैसे आदमी की विवशता यह है कि पेट का दर्द उसकी मौत तक रहस्यमय बना रहता है।

"और इस तरह
वह चला जा रहा था,
मेरे बचपन का साथी
जगरनाथ दुसाध।"

पर यहाँ पर भी केदारनाथ सिंह जी समाज के मामूली जनों को हारते हुये नहीं संघर्ष करते देखना चाहते हैं। अपनी दूसरी कविताओं में वे मनुष्य की जिजीविषा और बेहतर जीवन का स्वप्न सुरक्षित दिखाते हैं।

"पानी में घिरे हुए लोग। प्रार्थना नहीं करते।
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को। और एक दिन बिना सूचना के।
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर।
घर असबाब लाद कर चल देते हैं कहीं और यह कितनी अद्भुत है।"

उपर्युक्त कविता बाढ़ में गिरे हुए लोगों के बारे में है इतनी बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी मनुष्य अपनी जीने की इच्छा को किस प्रकार सुरक्षित रख सकता है। इसे सहज देखा जा सकता है। यह मनुष्य में दृढ़ विश्वास भरती है और चेतना जगाने का कार्य करती है कि कभी भी कहीं भी हार मान कर एक जगह बैठकर नहीं रहना चाहिये। अपने लिये एक अच्छी जगह, एक अच्छा कार्य हमेशा तलाशते रहना चाहिये। केदारनाथ उम्मीद के कवि हैं। वे अपनी इस उम्मीद को समाज के हर शोषित उत्पीड़ित मनुष्य में जगाना चाहते हैं। उनके पास निराशा का भाव नहीं है। उन्हें यकीन है कि यह पृथ्वी रहेगी और कठिन से कठिन समय में यह कविताएं आम आदमी का साथ देंगीं।

केदारनाथ सिंह अपने सामाजिक परिवेश के प्रति चौकन्ने और सजग कवि के रूप में सामने आते हैं। जिसका सामाजिक सरोकार संश्लिष्ट रचना विधान के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। उद्घोष से बचने के बावजूद उनके काव्य में सामाजिक चेतना व साहस की कमी नहीं है–

ठंड से नहीं मरते शब्द
वे मर जाते हैं साहस की कमी से
कई बार मौसम की नमी से
मर जाते हैं शब्द।

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

(ख) जनवादी चिंतन

प्रगतिशील कविता के अंतर्गत कवि केदार जी ने जनवादी चिंतन का आंकलन अत्यन्त निकटता से किया है। आज का व्यक्ति कभी–कभी स्वयं को ऐसी विलक्षण स्थितियों में पाता है जहां उसका अस्तित्व एक व्यक्ति का न होकर सिर्फ इत्यादि बनकर रह जाता है।

केदार जी ने वर्ष 1983 में ही 'बाजार' शीर्षक एक कविता लिखी थी और उन दिनों बाजार का जन–निरपेक्ष, जन विमुख और जनविरोधी चरित्र उन्होंने पहचाना था। वे कहते हैं कि 'बाजार में धूल न थी'। न जनता। दोनों को साफ कर दिया गया। जाहिर है कि इस समस्या ने बाद के वर्षो में एक बड़ा रूप धारण कर लिया।

केदार जी कहते हैं कि उनका 'आत्म' एक किस्म की सार्वजनिकता में छनकर व्यक्त हुआ है। यही कारण है वे कविताओं की लय अपनी गलियों के शोर–शराबे में खोजते हैं अपने शहरों में सारे शहरों की खाक धूल भरने देना चाहते हैं और कविता के माध्यम से लोगों को सलाह देते हैं कि वह सलाखों की यातना का सामना करें और खो गये लोगों से मिलें–

"भूखे का तसला बन जाओ
प्यासे का बन जाओ गिलास।"

केदारनाथ जी की कविता एक साथ ही जिंदगी के लिए उपलब्ध संसाधनों की बर्बादी और लोगों के बीच चरित्र में पैदा हो गए कलुष और अपारदर्शिता की विडंबना को प्रत्यक्ष करती है। यों उनके बीच जो सादृश्य सम्बन्ध है, उस पर शालीनता से विरत हुए बिना तीखा व्यंग्य करती है–

"समय ही कुछ ऐसा है
कि पानी नदी में हो
या किसी चेहरे पर झाँककर देखो तो तल में कुचरा
कहीं दिख ही जाता है।"

(ग) सृजनात्मक चेतना

प्रत्येक रचनाकार अपने समाज सापेक्ष संदर्भ में काल समय और स्पेस का हस्ताक्षर होता है। वह मानवीय संवेदना और शिल्प सृजन की संचेतना से युग के अन्तर्विरोधों को शब्द चित्रों में उकेरता है। ऐतिहासिक संक्रमण और राजनैतिक अस्थिरता उसे आपाधापी के जीवन में प्रतिबद्ध भाव से युगबोध को

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

रेखांकित करने वाला हस्ताक्षर बनती है तो बिम्बपरक रुझान उसे सर्जनात्मक चेतना का सजग–सांस्कृतिक शिल्पी बने रहने को बाध्य करते हैं।

यह युगबोध की पदचाप को रेखांकित करने वाली अनागत कविता हो, यासूने कमरे के दानव से लड़ने वाला कवि के मन का अकेलापन, दिग्विजयी अश्व या भटकता हमारा मनोभाव हो या पाठक के द्वारा तलाशता कवि मन का सहकर्मी भी। वह हमारे सर्जनात्मक जीवन का पारदर्शी बिम्बपरक संसार है, जिसे आलोचना के पारंपरिक साँचों में देखना दरअसल भूली बिसरी पगडण्डियों को तलाशना प्रगतिशील सर्जनात्मक चेतना को पहचानना है।

केदार जी अपने ही बिम्ब सृजन के दर्पण ग्रह में कैद नहीं और नहीं आत्ममुग्धता में प्रगतिशील विचारधारा की जार्गन–शब्दावली को अपनाते हैं। उनके लोकधर्मी, लोकचेतना के बिम्ब सृजन और लय सम्बन्धी प्रवाहयता को हम निम्न रचना–अंश 'दुपहहिया' में देख सकते हैं जो उनकी प्रारंभिक रचनाओं में से एक है पर वह बृहत्तर जीवन संदर्भो का बयान भी है–

झरने लगे नीम के पत्ते
बढ़ने लगी उदासी मन की।
उड़ने लगी बुझे खेतों से।
झुर–झुर सरसों की रंगीनी।
धूसर धूप हुई, मन पर ज्यों।
सुधियों की चादर अनबीनी।

दिन के इस सुनसान पहर में एक सी गई प्रगति जीवन की।

केदार नाथ जी के काव्य में सृजन चेतना को प्रारंभिक दौर की रचनाओं से वर्तमान दौर तक की 'बाघ' आदि रचनाओं में देखा जा सकता है। वे अपनी प्रारंभिक दौर की रचनाओं में से 'एक पारिवारिक प्रश्न' कविता में माँ की आस्था को तुलसी के विरवे में, पिता की छत्रछाया को बरगद छतनार में और किशोर भावुकता को नन्हे गुलाब को रोपने में तथा मुट्ठी में प्रश्न लिये वन, रेन, पर्वत, रेती में बेकार भटकने की बेचैन छवि को अपनी सृजनात्मक चेतना द्वारा दर्शाते हैं–

"छोटे से आंगन में।माँ ने लगाये हैं।
तुलसी के विरवे दो।
पिता ने उगाया है।बरगद छतनार।

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

मैं अपना नन्हा गुलाब।
कहाँ रोप दूँ।मुट्ठी में प्रश्न लिए।दौड़ रहा हूं वन–वन पर्वत–पर्वत।
रेती–रेती बेकार।"

(घ)सांस्कृतिक चेतना

प्रगतिशील कविता में सांस्कृतिक प्रक्रिया के संबंध में देखा जा सकता है कि कवि ने अपनी रचना में संस्कृति का रूपाकार स्थापित कर संस्कृति और साहित्य के अटूट सम्बन्ध को स्थापित किया है। रचनाकार का मूर्त संसार दृश्य जगत से अपने पात्रों, वातावरण, मानवीय सम्बन्धों और विचारों की प्रेरणा पाता है। अदृश्य सृष्टिकर्ता की तरह उसके तत्वों में आये युगानुरूप परिवर्तनों और भविष्य में होने वाले परिवर्तन की संभावनायें तक उसमें देखी जा सकती हैं। प्रगतिशील कवि एक अच्छे दृष्टा की तरह परिवर्तन और प्रगति की पदचाप सुनते हैं और कभी–कभी प्रभावी युगवाणी बनकर उनकी रचनाओं में उभकर आ जाता है।

इस दृष्टि से कवि संस्कृति का पोषण ही नहीं करते वरन् उसे समाज में जीवित भी रखते हैं।

केदार जी की सांस्कृतिक चेतना, प्रतिबद्धता और काव्य शिल्प की तराश के संदर्भ में मुक्तिबोध का कथन याद आता है कि"कविता एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है।" केदार अपने कवि–कर्म में भावबोध के स्तर पर सूर्य, हवा, पृथ्वी, जल–कच्छप के सांस्कृतिक भाव प्रसंगों में खोये रहते हैं। उनके पास सुबह, सूर्य, दिन,(समय) और आत्मबोध के (स्पेस) विलक्षण ऐन्द्रिय संवेदन और सांस्कृतिक (काल) बिम्ब हैं। जो पाठकों को नई ऊष्मा, संवेग, स्फूर्ति, विश्वास और प्रेरक दिशाओं में प्रयाण का संकेत देते हैं। 1951 के समय स्पेस और काल के आसपास 'खोल दूँ यह आज का दिन' नामक कविता नवरचनाकार की उमंग,अभिनव चेतना और शब्दों की नयी तराश वाले सांस्कृतिक बिम्ब का प्रमाण हैं–

"खोल दूँ संदेश की तरह यह एक भटका संदेश भी,
अनपढ़ा ही रह ना जाये। सोचता हूँ। खोल दूँ।
इस सम्पुटित दिन के सुनहरे पत्र को। जो द्वार पर गुमसुम पड़ा है खोल दूँ।

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

हाथ। जिसने द्वार खोला क्षितिज खोले। दिशायें खोली
न जाने क्यों इस महकते। मूक, हल्दी, रँगे ताजे किरण
मुदित संदेश को।
खोलने में काँपता है।"

केदार जी मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक चेतना से गहरे सरोकार रखने वाले कवि हैं। वे वंश परंपरा और उत्तरदायित्व के निर्वाह को 'चेहरा' कविता में रेखांकित करते हैं। जहाँ चिड़ियाँ अपने घोंसले में और भेड़ नदी के जल में आश्रय पाने और प्यास बुझाने आती हैं। जीवन के कटु, यथार्थ और विसंगतियों के बयान में वे काव्य वाचक और पाठकीय संवेदना में एकमेव होते हुए पूछ लेते हैं क्या नदी में चेहरे को छोड़ आना संभव होता है? यहां प्रश्न और उत्तर शैली है साथ ही भोक्ता मन और वाचक मन की निर्वैयक्तिकता व संलग्नता का अद्भुत संतुलन। उत्तरदायित्व कोई खूंटी? जो संभाल ले। एक जिंदा चेहरे का? अपना क्रूस स्वयं वहन करने की त्रासदी है यह। बिम्बों की सादृश्यता और पारिवारिक सांस्कृतिक मूल्यों के दायित्व वाले साँझे–शिल्प में यह कविता कई मायने में अद्वितीय है।

(ड.)विसंगतियों और अर्न्तविरोधों के प्रति असहमति

अकेलेपन और विस्थापन की गहरी पीड़ा अपनी सार्थकता की निरंतर खोज की व्यथा, विकास के अनुमाषित और अप्राकृतिक तर्कों और अर्षों से भरी इस दुनिया में 'निरर्थक' भावनाओं, संवेदनाओं के लिए जगह बचा लेने की छटपटाहट और समाज को अपने शिकंजे में कस रहे विस्मरण से निरंतर संघर्ष की वेदना केदार जी के इस संग्रह की पहली कविता है 'पोस्टकार्ड'। यह वित्त पोस्टकार्ड कवि को इसलिये आकर्षित करता है कि यह 'खुला' है। इसलिए खतरनाक है। खतरनाक है इसलिए सुंदर। किसी भी प्रकार की गोपनीयता के कवच से मुक्त पोस्टकार्ड में कवि को नई प्रकार जो सबके प्रति उत्तरदायी हो सके, अभिव्यक्ति की रोमांचक संभावना दिखाई देती है। "पोस्टकार्ड का नारा है 'लिखना' असल में दिखना है। समूची दुनिया को। जिसमें अंधे भी शामिल हैं।"

समूची दुनिया को दिखने की उस इच्छा का पूरा होना भी सहज नहीं यहाँ तक कि उन लोगों के बीच, जिनके अपना होने में कोई संदेह नहीं, लौटने की प्रबल इच्छा से मजबूत होकर महानगर से अपने गाँव आने पर भी

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

बेबसी का आलम यह है कि वह जानना चाहता है कि यह कैसे साबित हो कि उसकी आंखों में कोई तौलिया था सूटकेस नहीं। मैं ही हूँ। यह छटपटाहट गांव की सीधी–सादी मधुर स्मृति को जबरदस्ती सीने से चिपकाये रखने की इच्छा नहीं है, दरअसल यह समाज, अपने सामाजिक संबंधों के बीच खास अपनी स्थिति को पहचान करने की बेचौनी है। अजनबियत और अकेलापन विचारात्मक अवधारणा नहीं है क्योंकि 'गांव आने पर' में ही ये पंक्तियाँ मिलती हैं–

जो मेरे नहीं है।
आखिर वे भी मेरे ही हैं।
चाहे जहां भी रहते हों।

लेकिन उनको यह तकलीफ इस बात को लेकर है 'कौन हैं ये लोग। जिन्हें इतना जानता हूँ। कि बिल्कुल नहीं जानता। इन लोगों को पहचानना, उनके एकमेव होना जरूरी इसलिये है कि कवि को पता है कि इस संसार में उसके अपने अस्तित्व की रक्षा का उपकरण इन्हीं लोगों के पास है जैसे मेरा कवच और कुंडल इन्हीं के पास हो। पूरी दुनिया को अपना घर मानने के बाद भी उस जगह लौटने की जिद बनी हुई है। जिसके बारे में लगता है कि "यही–यही सिर्फ यही मेरा घर है।" लगभग यही द्वन्द 'पांचवी चिट्ठी' शीर्षक कविता में भी व्यक्त हुआ है। जिसमें सारी दुनिया से अनेक चिट्ठियों के मिलने के बाद भी एक खास शहर के खास हाथ की चिट्ठी का इंतजार बना हुआ है। जैसे यह लगता है कि अपने गांव में पहचान किये जाने पर ही अपना वजूद टिका हुआ है, वैसे ही–"क्यों आखिर क्यों मुझे लगता है कि यह जो दुनिया की जर्जर संचार व्यवस्था है उसे बदलने का रहस्य। उसी चिट्ठी और सिर्फ उसी पाँचवी चिट्ठी में बंद है।" व्यथा यह है कि वह'आज भी नहीं आई है।'

(च)नारी जागृति का संचार

हमारे समाज में विशेषकर हिंदू समाज में सामाजिक आचार और धर्म के नाम पर कुछ ऐसी भ्रामक मान्यतायें एक परम्परा के साथ प्रचलित हैं जो एक सुदीर्घ काल से नारियों के अपमान, अवहेलना और प्रताड़ना में सहायक हैं। हमारे समाज के बहुत सारे नियम केवल नारी जाति के लिए बने हैं। कृषकों और मजदूरों की तरह भारतीय नारी भी भीतर से चिर शोषित रही है। वैदिक काल में जहाँ यह कहा जाता था कि "जहाँ पर नारी को पूजा जाता

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

है, वहाँ पर देवताओं का निवास होता है" यह भावना धीरे–धीरे हमारे समाज से लुप्त होती गयी और वो केवल घर की सेविका और पुरुषों के विलास की सामग्री ही बन रह गयी।

समाज में सबसे ज्यादा नियम, परम्परायें नारियों को ही मानने पड़ते हैं। देखा जाये तो यदि कभी कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो वह सौभाग्य–वृत से विहीन होकर अभिशप्त जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाती है। उसके प्रति समाज की सर्वाधिक सहानुभूति होनी चाहिए किंतु वह समस्त सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से विहीन होकर तिरस्कृत जीवन व्यतीत करती है और समाज सदैव उसे सशंकित दृष्टि से देखता है। नारी इसका विरोध नहीं कर पाती है, परंतु कवि केदार जी ने अपने काव्य के माध्यम से नारियों में जागृति का संचार करने की कोशिश की है।

एक अन्ध कविता 'धुलते हुये गलते हुये' में केदारनाथ सिंह स्त्री की विवशता की ओर इशारा करते हैं कि बारिश हो रही है पर यह नारी अपने भीगने की चिंता ना करके गोबर को भीगने से बचाने में जुट जाती है, इसके लिये चाहे वह खुद भीग कर बीमार हो जाये। इस कविता के माध्यम से कवि यह दिखाने की कोशिश में है कि हमारे समाज में नारी किस प्रकार अंदर ही अंदर घुल रही है–

सहसा बौछारों की ओट में
दिख जाती है स्त्री
उपले बटोरती हुई।
बूंदों की मार से
जल्दी–जल्दी उपलों को बचाने की कोशिश में
भींगती है वह
बचाती है उपले।

नारी की दशा युगों–युगों से दयनीय रही है। उसे कभी भी घर की मालकिन न समझ कर घर की नौकरानी ही माना गया है जिससे कोई भी तुच्छ कार्य करवाया जा सके। वह पुरुषों की काम–लिप्सा की पूर्ति का एकमात्र साधन समझी जाती रही है। समाज में उसका कोई भी महत्व नहीं समझा जाता रहा। प्रगतिवादी कवियों का ध्यान उसकी इस दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने उसके वास्तविक महत्वपूर्ण कार्य, शक्ति और महत्व

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

का प्रतिपादन किया। उन्होंने युगों–युगों से शोषित और क्षमित नारी को उत्थान का संदेश दिया और उसे अंधकारपूर्ण जीवन से बाहर निकाल कर्म क्षेत्र में अपनी शक्ति प्रदर्शन करने को प्रेरित किया। केदार जी ने अपने काव्य के माध्यम से नारी को जगाने का कार्य किया है और उसमें ऐसी ताकत भरने का प्रयास किया है कि वह खड़े होकर अन्याय का सामना कर सके।

अपनी एक अन्य कविता 'टमाटर बेचने वाली बुढ़िया' के माध्यम से केदार जी एक ऐसी बुढ़िया को लाते हैं जो निरंतर संघर्षशील होकर अपनी मूलभूत प्रवृत्ति ममता को नहीं छोड़ती है। नारी के माध्यम से वे यह दिखाने की कोशिश में है कि अभी भी समाज में मानवीयता शेष है। वृद्धा में एक नारीसुलभ सृजनात्मकता है जो कि एक नये समाज की तैयारी में है–

"अब बुढ़िया के हाथ
टमाटरों से खेलते हैं
वह एक भूरे टमाटर को धीरे से उठाती है
और हरी पत्ती के नीचे
छुपा देती है मां की तरह।
मुझे बुढ़िया की यह हरकत
बेहद दिलचस्प लगती है
यह माँ का एक बिल्कुल नया चेहरा है
जो हरी पत्तियों के नीचे से
झाँक रहा है।"

(छ)मानवीय मूल्यों का विकास

केदारनाथ सिंह जी की कवितायें अपने समय में दाल में नमक की तरह प्रवेश करती हैं। उसमें सार्थक ढंग से कहीं ना कहीं अपने होने और जीने का हर संभव प्रयास दिखाई पड़ता है। इस होने की प्रक्रिया में होना ही जीना है। यह आठवीं शताब्दी से भी खुराक लेते हैं और पच्चीसवीं शताब्दी से भी। इस तरह वह भूत (परम्परा) वर्तमान (जटिल जीवन बोध) और भविष्य (विजन) को एक सूत्र में इस तरह पिरो देते हैं कि सब कुछ एक में घुलमिल जाता है।

मानवीय मूल्यों की आधारशिला आत्मीयता, प्रेम, दया, परोपकार, नैतिकता, सत्य, अहिंसा आदि में समय की गति के साथ–साथ परिवर्तन आता जा रहा है। मानव मूल्य अब एक स्थान पर ही दृढ़ होकर नहीं रह गए हैं

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

वरन् उनमें भी स्थान और समय के अनुरूप बदलाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। वर्तमान समय में सारे मानवीय मूल्य एक अमानवीय हाहाकार में परिणत हो गये हैं। सही अर्थों में सभी मूल्य कहीं खोते जा रहे हैं। प्रगतिशील हिंदी कविता में ध्वस्त होते हुये नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों की बेबसी अपने चरम स्तर पर व्यस्त हुई है। सारे नैतिक मूल्य ताक पर रखकर आज का कार्य–व्यापार घूस, बेईमानी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद पर आधारित हो गया है। मूल्यों के संसार में इतना बड़ा विघटन कई सौ वर्षों में पहली बार देखने को मिलता है।

केदार जी ने विघटित होते हुये मूल्यों के संसार में उन जीवन मूल्यों को तलाशने का प्रयास किया है जिसको धारण करके ही मनुष्य ने समाज में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है और पशुत्व से उच्च श्रेणी पाकर मनुष्यत्व की गरिमा प्राप्त की है। मनुष्य का विनम्र, दयावान, श्रद्धालु, परोपकारी, नैतिक तथा व्यवहार परायण होना ही उसका मूल्यवान होना है। विनम्रता मनुष्य का वह गुण है जो सामने वाले व्यक्ति पर एक जादू की तरह असर करती है और उस समय अच्छी बुरी बात भूलकर सिर्फ विनम्रता का ही असर रह जाता है। विनम्रता अधिक ताकतवर की मुद्रा होती है और वह हर स्थिति में जीत प्राप्त करके ही रहती है–

एक जादू का असर करती है हर विनम्रता
काम ही नहीं कर पाती है अक्ल
कि जान सके उसके पीछे छिपे मंतव्य

विनम्रता हमारी इस कमजोरी को अच्छी तरह जानती है।

(ज)क्रान्तिकारी स्वर

केदारनाथ सिंह की ऐसी कविताएं बेजोड़ हैं, जिसमें अपने समय, परंपरा और अपनी संस्कृति से उनकी गहरी आत्मीयता है। वे समाज में फैली विरूपताओं को अपनी कविताओं में प्रतिरोधी स्वर से सामने लाते हैं। मूलतः यह प्रतिरोध उन्हें कविता में अहम लगा। इसलिये जब अमरीका और उसके फैलाए गए विश्व–बाजार और हिंस उपभोक्तावाद की देन यह थी कि बकौल मंगलेश डबराल सी.एन.एन.चैनल इराक पर अमेरिकी आक्रमण को इतनी विज्ञापनी किस्म की मजेदारी के साथ दिखा रहा था कि दुनिया भर के लोग बीयर पीते, हैमबर्गर खाते हुये देख सकते थे। उन्होंने टी.वी. पर एक शिशुदेह

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

की बेदम रुलाई सुनकर और चेहरे से लटकर हवा में झूमती हुई उसकी आंख देख कर लिखा था–

बंद कर दो टी.वी.
अगर जला ना सको उसे
इनकार करता हूँ मैं कवि हूँ।

केदार जी ने समूची काव्य यात्रा में इन सांप्रदायिक और साम्राजी मंसूबों का क्रांतिकारी स्वर से प्रतिकार किया है चाहे वियतनाम के संदर्भ से प्रेरित कविता 'हाकर' हो या सन् 47 को याद करते हुये, जैसी कविता, जिसमें भारत विभाजन की सच्ची और अत्याधिक पीड़ा मौजूद है। फिर एक कविता में व्यक्त हुआ उनका यह असमंजस में क्यों? और किस तर्क से हिंदू हूँ। क्या मैं कभी जान पाऊंगा? उनके नये संग्रह से साफ है कि न वे अपनी सभ्यता की गंगा–जमुनी विरासत कभी भुला सकते हैं, न उस हिंदुस्तान को, जो कि टूटने से पहले था और जिसे तलाशते हुये उनका कवि मन न जाने कब से भटक रहा है। यही कारण है कि बर्लिन की टूटी दीवार देखकर उन्हें भारत और पाकिस्तान के बीच खिंची हुई अदृश्य दीवार याद आती है और वे पूछते हैं–"आखिर यह दीवार। कब टूटेगी?

"इतने वर्ष हुये
गजलों से भरे इस उपमहाद्वीप में
मुझे एक भूले हुए मिरारे का अब भी इंतिजार है।"

इस कविता में कवि यह बताते हैं कि बाबरी मस्जिद के ढहाये जाने से दो समुदाय एक दूसरे के लिये सहसा और भी पराये हो गये।

एक महत्वपूर्ण कवि अपने समय में मनुष्य और सत्ता के सम्बन्धों में हो रहे परिवर्तन को अपने शब्दों द्वारा रेखांकित करता है। यह दरअसल समाज के नव्यतम शक्ति–रचनाओं को अनावृत करने की कोशिश है, जिससे वक्त और इंसान दोनों की जेहनीयत का पता चलता है। केदार जी की कविता एक साथ जिंदगी में उपलब्ध संसाधनों की बर्बादी और लोगों के चरित्र में पैदा हो गए कनुष और अपारदर्शिता की विडम्बना को क्रान्तिकारी स्थर द्वारा प्रत्यदन करते हैं।

जीवन की इस धीमी गति से कवि को इतना क्षोभ है और उसकी व्यथा पर इतना आक्रोश कि वह अपने शहर को अपने ही शहर से दूर ले जाना

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

चाहते हैं। लेकिन कहां। केदारनाथ सिंह की कविता का एक छोर वह है जहाँ वे समय को लेकर परंपरा के पास जाते हैं और दूसरा छोर वह है जहाँ वह समय को समय में ही कहीं ले जाना चाहते हैं– किसी मैकेनिक या बूढ़े खल्ती के पास। मकसद यह है कि इसके पानी को उसका पानीपन और इसकी त्वचा को। उसका स्पर्श लौटाया जा सके। यह चीजों में उनके अर्थ को फिर से प्रतिष्ठित करने की इच्छा है। मगर यथार्थ यह है कि आजादीके आधी सदी बाद भी भारतीय राजनीतिक सत्त–तत्र किसी सच्चे और व्यापक परिवर्तन की बजाय कामचलाऊ संशोधन, असंतोष, अधूरापन और बैचारगी है– जरा–सी हर आंख में। जरा–सा स्वाद।'इंडिया शाइनिंग' की तस्वीर दिखायी जाती है, उसके पीछे गुलामी और गरीबी है, जिसमें लोगों को कभी भी मार दिया जाता है और वे अर्धमानवीय,पशुवत जीवन जीने को मजबूर हैं–"अरे। यह सिर किसका है। जो टंगा है डाल से। यह हाथ है किसका। जो बन गया है पाँव। यह चेहरा किसका है। जो पढ़ा है गटर में।" कवि इन सवालों और विडम्बनाओं को लेकर क्रांतिकारी रूप से आजादी के उत्सव में शामिल होना चाहते हैं–"मित्रो, मुझे सलाह दो। कैसा रहे–चला जाँऊं उत्सव में।इस सबको लेकर।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ अग्रवाल, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली 1998
जमीन पक रही है, प्रकाशन संस्था, दरियागंज, नई दिल्ली
यहां से देखा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली
अकाल में सारथ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली 1988
उत्तर कबीर और अन्य कवितायें, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली 1995
बाघ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली 1998
बाल स्ताप और साइकिल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली 2005
प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies